Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 9.134
Volume - 8, Issue - 10, October - 2025

DOIs:10.2018/SS/202510007 --:-- Research Paper / Article / Review

प्रस्थानत्रयी में अक्षरब्रह्म के चार स्वरूप : विशिष्ट विवेचन

डॉ. स्वामी ज्ञानानंददास
आर्ष शोध संस्थान, गांधीनगर
Email - ga01.aarsh.gnr@baps.edu.in

सार: सनातन हिन्दू धर्म के सर्वमान्य शास्त्रों; उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता तथा ब्रह्मसूत्र, को सामूहिक रूप से 'प्रस्थानत्रयी' कहा जाता है। ये तीनों ग्रंथ वेदांत दर्शन के आधारस्तंभ माने जाते हैं और समस्त आचार्यों द्वारा इनके सर्वोच्च अधिकार एवं प्रामाणिकता को स्वीकार किया गया है। इन ग्रंथों में वर्णित सिद्धांत केवल दार्शनिक विमर्श तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे मानव जीवन के आध्यात्मिक, नैतिक एवं दार्शनिक आयामों को भी दिशा प्रदान करते हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में प्रस्थानत्रयी में प्रतिपादित 'अक्षरतत्त्व' की अवधारणा का गहन अध्ययन एवं मूल्यांकन किया गया है। इस शोध में विशेष रूप से अक्षर के चार स्वरूपों; चिदाकाश, अक्षरधाम में परब्रह्म के सेवकस्वरूप, धामस्वरूप तथा पृथ्वी पर गुरुस्वरूप अक्षरब्रह्म, का विवेचन किया गया है। इन चारों स्वरूपों का विश्लेषण उपनिषदों के शाश्वत सिद्धांत, गीता के व्यावहारिक तत्त्वबोध तथा ब्रह्मसूत्र के तार्किक सूत्रों के माध्यम से किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि अक्षरतत्त्व का स्वरूप केवल सैद्धांतिक न होकर अनुभवात्मक और तात्त्विक दोनों स्तरों पर एकत्व का संदेश देता है। इस विवेचन के माध्यम से न केवल वेदांत दर्शन की गूढ़ अवधारणाओं का प्रकाश पड़ता है, बल्कि यह भी प्रतिपादित होता है कि 'अक्षर' ही वह शाश्वत तत्त्व है जो जीव को ब्राह्मी स्थिति को धारण करवा के परब्रह्म की निर्विघ्न भक्ति की ओर अग्रसर करता है। इसके अतिरिक्त अक्षरब्रह्म तत्त्व जीव, ईश्वर, माया और परब्रह्म के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करता है।

कुंचिकारूप शब्द : अक्षरब्रह्म, स्वरूप, परब्रह्म, साधना, ब्रह्म, प्रस्थानत्रयी, मुक्ति ।

1. भूमिका – अक्षरब्रह्म का परिचय

इसी अक्षरब्रह्म के परिचय की जिज्ञासा श्रीमद्भगवद्गीता में प्रस्फुरित हुई थी ।

'किम् तद् ब्रह्म' (भ.गी.८/१) वह ब्रह्म क्या है ? भगवत गीता में अर्जुन मानों हम सब का प्रतिनिधित्व करते हुए भगवान श्रीकृष्ण से यह प्रश्न करता है । उत्तर में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं **'अक्षरं ब्रह्म परमम् ।'** (भ.गी.८/३)

प्रिय अर्जुन, इस त्रिगुणमय में प्रपंच से परे जो अक्षर है, वही ब्रह्म है अर्थात् अक्षर, ब्रह्म का ही दूसरा नाम है । दोनों का समन्वय करने पर अक्षरब्रह्म नाम हुआ है । साथ-साथ यह अक्षरब्रह्म कैसा है । इसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा, **'यद् अक्षरं वेदविदो वदन्ति ।'** (भ.गी.८/११). हे अर्जुन ! इस अक्षर ब्रह्म के स्वरूप का तो भी गाते हैं अर्थात् यह अक्षर की बात आज की नहीं है, सनातन है । मानो **'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति ।'** (कठ. उप.२/१५) सभी वेद जिसकी महिमा गाते हैं, **'एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म'** (कठ. उप.२/१६). यह जो अक्षर है वही ब्रह्म है । इस प्रकार यजुर्वेद में समाहित कठोपनिषद के नाद को तथा अथर्ववेद में निहित **'तदेतद् अक्षरं बह्म'** (मु. उप.२/२/२). यह वही अक्षरब्रह्म है उद्घोषणा को ही श्री कृष्ण

भगवान प्रतिध्वनित कर अर्जुन को सुना रहे हैं । इसीलिए उन्होंने कहा, **'ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म'** (भ.गी.८/१३). यह **ॐ** कार नामक अक्षरब्रह्म है ।

2. अक्षर ब्रह्म-ब्रह्मविद्या का अनिवार्य घटक

'विद्ययाऽमृतमश्नुते', (ईश. उप.११). **'विद्यया विन्दतेऽमृतम्'** (केन. उप.२/४). आदि श्रुतियाँ परम कल्याण के लिए ब्रह्मविद्या को इंगित करती है ।

परंतु इस ब्रह्मविद्या की व्याख्या मुंडक उपनिषद् में महर्षि अंगिरा ने की है । वे कहते हैं - **'येन अक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ।'** (मु.उ.१/२/१२). ब्रह्मविद्या का यह लक्षण है । **'अक्षरम्'** अर्थात् अक्षरब्रह्म तथा **'पुरुषम्'** अर्थात् पुरुषोत्तम । इन दोनों दिव्य स्वरूपों का तत्वत: ज्ञान ही ब्रह्मविद्या है।

इसी कड़ी में प्रश्नोपनिषद के महर्षि पिप्पलाद परम मुक्ति के उपाय के रूप में ओंकार के ध्यान विषयक निरूपण करते हुए कहते हैं - **'एतद् वै सत्यकाम परं च अपरं च ब्रह्म यद् ॐकारः ।'** (प्रश्न.उप.५/२). अर्थात् हे सत्यकाम ! यह ओंकार तो समग्र ब्रह्मविद्या को स्व में समाविष्ट कर बैठा है । अतः प्रथम इसके अर्थ को जान लेना चाहिए । 'सत्यकाम ! ओंकार के दो : अर्थ है एक **'परं ब्रह्म'**अर्थात् परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण और दूसरा **'अपरं बह्म'** अर्थात् अक्षरब्रह्म । इस प्रकार ओंकार के उच्चारण करते हुए उसके अर्थ रूप अक्षर तथा पुरुषोत्तम इन दोनों दिव्य तत्त्वों का अनुसंधान करने पर वह **'स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात् परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते ।'** (प्र.उप.५/५). ब्रह्म लोक अर्थात् अक्षर धाम को प्राप्त कर सर्व आत्माओं से परे जो अक्षरब्रह्म है उससे भी परे पुरुषोत्तम को साक्षात्कार प्राप्त करता है।

ब्रह्मविद्या के इस रहस्य को सोचते हुए व्यास जी को भी उपनिषद और भगवत गीता में ब्रह्मविद्या का आलोचन कर उस का संक्षिप्त सार प्रस्तुत करने की इच्छा हुई ब्रह्मा विद्या का यह सारभूत ग्रंथ अर्थात् ब्रह्मसूत्र । **'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'(ब्र.सू.१/१/१).** इस तरह ब्रह्मसूत्र के आरंभ में ही उन्होंने समूची ब्रह्मविद्या को एक सूत्र में गूँथ दिया है अक्षरब्रह्म तथा परब्रह्म इन दोनों शब्दों में सामान्यत प्रयुक्त **'ब्रह्म'** शब्द को पसंद कर उन्होंने अक्षर तथा पुरुषोत्तम इन दोनों तत्त्वों की जिज्ञासा को मोक्ष के उपाय के रूप में प्रस्थापित कर दिया ।

इस प्रकार अक्षरब्रह्म तथा परब्रह्म इन दोनों दिव्य तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान ही ब्रह्मविद्या की संपूर्णता है ब्रह्मविद्या की इस विशिष्ट व्याख्या का तात्पर्य भी शास्त्रों ने हमें समझाया है । भगवद् गीता में कहा है - **'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्भति । समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।।'** (गी.१८/५४). ब्रह्मरूप अर्थात् अक्षर रूप होने पर ही पुरुषोत्तम की भक्ति का लाभ प्राप्त होता है । तैत्तिरीय उपनिषद में भी कहा है **'ब्रह्मविदाप्नोति परम्'** (तै.उ.२/१/१). जो ब्रह्म को अर्थात् अक्षर को जानता है अर्थात् ब्रह्मरूप होता है उससे ही परमात्मा की प्राप्ति होती है । स्पष्ट है कि आत्यंतिक कल्याण के लिए पुरुषोत्तम को जानना अनिवार्य है । उसकी उपासना भक्ति भी अनिवार्य है । चूँकि ज्ञान, उपासना तथा भक्ति को यथार्थत सिद्ध करने के लिए अक्षरब्रह्म का ज्ञान भी अति अनिवार्य है । इस प्रकार अक्षरब्रह्म ब्रह्मविद्या का अनिवार्य घटक है ।

3. अक्षरब्रह्म आत्मा तथा परमात्मा से भिन्न तत्त्व

अक्षरब्रह्म, जीवात्मा ईश्वरआत्मा तथा परमात्मा से तत्त्वतः भिन्न है । शास्त्रों में इस तथ्य का विशद विवरण किया गया है।

कठोपनिषद में इन्द्रियादि से अर्थ, उससे मन, मन से आत्मा, अक्षरब्रह्म तथा परमात्मा की स्तर अधिकता दर्शाता निरूपण किया गया है । **'आत्मा महान् परः'** (कठ.उप.३/१०). कहकर इंद्रिय आदि सबसे आत्मा को **'महान परः'** अर्थात् नियामक श्रेष्ठ एवं आधार कहा गया है । तत्पश्चात् कहा कि **'महतः परमव्यक्तम्'** (कठ.उप.३/११). उस महान आत्मा से भी अव्यक्त नामक तत्व श्रेष्ठ है अर्थात् अव्यक्त आत्मा का नियामक एवं आधार है । यह अव्यक्त नामक तव ही अक्षरब्रह्म

है । श्रीमद्भगवद्गीता में इस बात को स्पष्ट करते हुए श्री कृष्ण भगवान कहते हैं, **'अव्यक्तः अक्षरः इति उक्तः'** (गी.८/२१). अर्थात् अक्षरब्रह्म अव्यक्त शब्द से कहा गया है ।

इसी श्रेष्ठता की श्रृंखला में आगे अक्षरब्रह्म से परे परमात्मा का निर्देश करते हुए कहा है कि 'अव्यक्तात् पुरुषः परः' (कठ.उप.३/११). अर्थात् अक्षरब्रह्म अव्यक्त से भी पुरुषोत्तम परमात्मा पर है । अर्थात् वे अक्षर के भी नियम एवं आधार हैं ।

इस प्रकार आत्मा से श्रेष्ठ एवं एकमात्र परमात्मा से न्यून अक्षरब्रह्म को हमारे प्राचीन शास्त्रों ने आत्मा परमात्मा से भिन्न तव के रूप में प्रतिपादित किया है । श्रीमद्भगवद्गीता में भी इस सिद्धांत की पुष्टि की है **'द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्च अक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।। उत्तमपुरुषसत्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।'** (भ.गी.१५/१६-१७). अर्थात् इस जगत में दो प्रकार के पुरुष है । एक क्षर दूसरा अक्षर । क्षर अर्थात् सर्व आत्मा है और उससे भिन्न जो कूटस्थ है, वह अक्षरब्रह्म है और पुरुषोत्तम तो इन दोनों से परे है जो परमात्मा कहलाते हैं ।

इसलिए व्यासमुनि ने भी ब्रह्मसूत्र में **'पराधिकरणम्'** (ब्र.सू.३/२/३०). जैसे उप प्रकरण की रचना कर इस सिद्धांत को सूत्र रूप में प्रतिपादित किया हैं ।

यहाँ तक हमने जाना कि ब्रह्मविद्या का अनिवार्य घटक अक्षरब्रह्म तत्वत: तथा आत्मा एवं परमात्मा से भिन्न है । आए अब अक्षरब्रह्म के चार विभिन्न स्वरूप को पहचानें ।

4. अक्षरब्रह्म के चार स्वरूप

स्पष्टता - अक्षरब्रह्म तत्त्वतः एक होने पर भी विभिन्न कार्यों के आधार पर इसके चार रूप है -

१. चिदाकाशरूप
२. धामरूप
३. धाम में परमात्मा के सेवक रूप और
४. गुरुहरिरूप

१. अक्षरब्रह्म चिदाकाश के रूप में दिव्य चैतन्यमय आकाश अर्थात् चिदाकाश आकाश की तरह व्यापक होने से अक्षरब्रह्म को चिदाकाश संज्ञा दी गई है । अक्षरब्रह्म चिदाकाश के रूप में विश्व का कारण विश्व में व्यापक तथा विश्व का आधार है ।

अक्षरब्रह्म सकल विश्व का कारण
'अक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ।' (मु.उप.१/१/७).

समग्र विश्व की उत्पत्ति अक्षर ब्रह्म से होती है । अक्षरब्रह्म का यह अद्वितीय महात्म्य है । यह सनातन सिद्धांत है कि परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण स्वतंत्र रूप से सकल विश्व का कारण है । परंतु इसी पर ब्रह्म की नित्य इच्छा से अक्षरब्रह्म भी परब्रह्म के अधीन रहते हुए समग्र विश्व का कारण बन जाते हैं । अक्षरब्रह्म के इस सनातन गुण को उपनिषदों में विभिन्न दृष्टांतों द्वारा समझाया गया है । आगे अंगिरा ऋषि ३ अलौकिक दृष्टांतों द्वारा मुंडक उपनिषद में कहते हैं : **'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति । यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ।।'** (मु.उप.१/१/७).

प्रथम दृष्टांत - शिष्य जिस प्रकार ऊर्णनाभि अर्थात् मकड़ी अपनी इच्छा अनुसार लार से तंतुओं को उत्पन्न कर जाल बुनती है तथा उसे पूरी निगल जाती है । उसी प्रकार अक्षर द्वारा इस विश्व की उत्पत्ति होती है ।

द्वितीय दृष्टांत- जिस प्रकार भूमि पर अनेक औषधीय वनस्पतियाँ उत्पन्न होती है उसी प्रकार अक्षरद्वारा इस विश्व की उत्पत्ति होती है ।

तृतीय दृष्टांत - जिस प्रकार शरीर पर रोम तथा नाखून उत्पन्न होते हैं ठीक वैसे ही अक्षर विश्व का निर्माण कर देता है ।

इस प्रकार इन तीनों दृष्टांतों के माध्यम से हमने जाना कि पुरुषोत्तम के दिव्य संकल्प को जानकर अक्षर सृष्टि का कारण बनता है ।

इस प्रकार समुत्पन्न सृष्टि का प्रलय भी अक्षर में किस प्रकार होता है उसे समझाते हुए ऋषि आगे कहते हैं - **विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवाऽपियन्ति ।'** (मु.उप.२/१/१). हे सौम्य ! इस अक्षर में से विविधता युक्त भावात्मक पदार्थ सृष्टि के रूप में उत्पन्न होते हैं तथा अंत में उसी अक्षर के एक देश में पूर्ण लीन हो जाते हैं इसी हेतु की संतुष्टि के लिए भगवत गीता के १३ वें अध्याय में इस अक्षर में को 'ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च' (गी.१३/१६). अर्थात् सकल जगत की उत्पत्ति एवं विनाश का कारण कहा है ।

5. अक्षरब्रह्म विश्वव्यापक

अक्षरब्रह्म की सर्वव्यापकता का महात्म्यगान हमारे शास्त्रों ने भली-भांति किया है । **'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण । अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैव ।'** (मु.उप.२/२/११). सचमुच, हम सब के पूर्व एवं पश्चात स्थान पर यह अमृतमय अविनाशी अक्षरब्रह्म है । दक्षिण एवं उत्तर दिशा में भी अक्षरब्रह्म है । अधोऊर्ध्व सभी स्थानों अक्षरब्रह्म है पर यह वाक्य महर्षि अंगिरा ने मुंडक उपनिषद में कहे हैं । शुक्ल यजुर्वेद की संहिता के अंतिम अध्याय के रूप में प्राप्त ईशावास्य उपनिषद में परब्रह्म के साथ-साथ अक्षरब्रह्म की व्यापकता का भी उद्घोष किया गया है । **'तद् दूरे तद् वन्तिके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्य बाह्यतः ।।'** (ईशा.उप.५). यह अति दूर भी है और समीप भी है । सबके भीतर भी है और बाहर भी है ।

ईशावास्य का यही भाव गीता में भी आवृत हुआ है, **'बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च । सूक्ष्मत्वात् तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ।।'** (भ.गी.१३/१५). **'तस्माद् सर्वगतं ब्रह्म'** (भ.गी.३/१५). अक्षर ब्रह्म सर्वगत है, सब में व्यापक है, यज्ञ में यज्ञ द्रव्य को अर्पण करने का साधन सृवा आदि अक्षर ब्रह्ममय है । हवन कार्य में उपयोगी घी, तेल, चावल, यव आदि द्रव्य भी अक्षरब्रह्म मय है । अग्नि भी अक्षरब्रह्म मय है ।होता भी अक्षरब्रह्म मय है । इस प्रकार ब्रह्ममयता से रसबस हुए कर्मों के कर्ता पुरुष का परम गंतव्य स्थान अक्षरब्रह्म है ।

महर्षि व्यास जी ने भी **'सर्वत्राधिकरणम्'** (ब्र.सू.१/२/१). नामक उप प्रकरण की रचना कर उपर्युक्त तथ्यों का संग्रह किया है ।

जहां अक्षय ब्रह्मा की व्यापकता की चर्चा हो रही हो वहाँ उपनिषद में वर्णित दहर विद्या स्मरणीय है । छांदोग्य उपनिषद के आठवें अध्याय में वर्णित अक्षर ब्रह्म के व्यापक स्वरूप का विशिष्ट ज्ञान ही विद्या है । यह विद्या अक्षरब्रह्म की विश्वव्यापकता को हमारे ह्रदय के साथ ऐक्य स्थापित करती है । उसमें कहा गया है कि **'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः ।'**(छान्दो.उप.८/१/१).

दहर का अर्थ है सूक्ष्म ! सर्व मनुष्य के शरीर में स्थित ह्रदय रूपी कमल में भी एक सूक्ष्म आकाश है, जिसे उपनिषद में **'दहराकाश'** कहा गया है । यही दहरकाश चिदाकाशरूपी अक्षरब्रह्म है । यहाँ हम सभी के ह्रदय में भी व्याप्त है । इस प्रकार अक्षरब्रह्म का हमारे साथ एक विशिष्ट संबंध भी है । दशराकाश का अर्थात् हमारे ह्रदय में स्थित चिदाकाशस्वरूप अक्षरब्रह्म के व्यापक स्वरूप का यह उपदेश हुआ है । इसीलिए इसे दहर विद्या कहते हैं । इस दहर

ISSN(o): 2581-6241
Impact Factor: 9.134

विद्या को लक्ष्य में रखकर ही महर्षि व्यास जी ने ब्रह्मसूत्र में **'दहराधिकरणम्'(१/३/१४).** नामक उपप्रकरण लिखा है तथा उसमें सर्वव्यापक अक्षरब्रह्म की सभी के हृदय कमल में व्याप्त होने की विशेष क्षमता का निरूपण किया गया है ।

अतएव परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान स्वामिनारायण ने वचनामृत में कहा है- 'इस प्रकार ब्रह्मांड के चारों ओर चिदाकाश है तथा ब्रह्मांड के भीतर भी चिदाकाश है और इस सर्वाधार आकाशकार चिदाकाश रूपी अक्षरधाम के रूप में जिसकी दृष्टि हो उसे दहरविद्या कहते हैं । अनेक ब्रह्मविद्याओं में से यह भी एक ब्रह्मविद्या है (वच.ग.प्र.४६).

इस प्रकार चिदाकाश के रूप में अनंत कोटि ब्रह्मांडों में व्याप्त होने की अक्षरब्रह्म की क्षमता को हमने जाना ।

6. अक्षरब्रह्म सर्वाधार

सर्वव्यापक होने के साथ-साथ अक्षरब्रह्म सकल सृष्टि का आधार भी है । कठोपनिषद में यमराज ने बाल नचिकेता को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है । जिसमें अक्षरब्रह्म की सर्वाधारता को विषदरूप से समझाया है । **'तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ।'** (कठ.५/८). हे नचिकेता ! यह अक्षरब्रह्म अविनाशी कहलाता है ! अनंत कोटि ब्रह्मांड रूपी सभी लोग और अक्षरब्रह्म के आधार पर अवस्थित है । अतः अनंतकोटि ब्रह्मांडों में कोई भी ऐसा नहीं है जो इस अक्षरब्रह्म का उल्लंघन कर सके ।

इसी तरह की बात छांदोग्य उपनिषद में भी प्रतिध्वनित होती है **'उभे अस्मिन् द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते ।'** (छां.उप.८/१३). यह द्युलोक या पृथ्वी लोक आदि जो कुछ भी है सब कुछ अक्षरब्रह्म में समाहित है । मुंडक उपनिषद् में भी यह बात अनावरित हुई है **'यस्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च तदेतदक्षरं ब्रह्म'** (मुं.उप.२/२/२) । **यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतम्** (मुं.उप.२/२/४). द्युलोक पृथ्वी लोक अंतरिक्ष लोग आदि लोग तथा उनके अधिपति आदि सभी जिसके आधार पर रहते हैं वह अक्षरब्रह्म है ।

इस विषय में गीता कहती है 'सर्वभृच्चैव'(भ.गी.१३/१४). अक्षरब्रह्म सभी का धारक है 'भूतभतृ च'(भ.गी.१३/१७). सकल जीव प्राणी मात्र का धारक एवं पोषक है ।

इस प्रकार विविध उपनिषदों एवं गीता में सकल विश्व के आधार के रूप में वर्णित अक्षरब्रह्म की दिव्य कीर्ति को व्यास जी ने भी सूत्रों में संग्रथित किया है **'द्युभ्वाधिकरणम्'** नामक उप प्रकरण में उन्होंने इस सर्वाधारता को प्रसिद्ध किया है । सूत्रम् **'द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ।'** (ब्र.सू.१/३/१).

इस प्रकार अक्षरब्रह्म की जगतकारणता, व्यापकता एवं सर्वधारता के विषय में हमारे सनातन ग्रंथों ने बहुत कुछ कहा है ।

इन समस्त वचनों का सार उद्धृत करते हुए परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण भगवान स्वामिनारायण ने कहा है - ब्रह्मज्ञान के मार्ग को इस प्रकार समझे कि ब्रह्म निर्विकार निरंश है, उसमें विकार संभव नहीं है, उसके अंश भी असंभव है ब्रह्म प्रकृतिपुरुष आदि सभी का कारण है, आधार है तथा सभी में अंतर्यामी शक्ति से व्यापक है और उस ब्रह्म से परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण भिन्न है ! वह तो ब्रह्म के भी कारण, आधार एवं प्रेरक है । इस ज्ञान को आत्मसात कर अपनी जीवात्मा का ब्रह्म के साथ ऐक्य स्थापित करके परब्रह्म की स्वामी-सेवक भाव से उपासना करनी चाहिए । उपर्युक्त रीति के अनुसरण से ब्रह्मज्ञान परमपद की प्राप्ति का निर्विघ्नं मार्ग है (वच.ग.म.३). इस प्रकार अक्षरब्रह्म को चिदाकाश के रूप में जानने के पश्चात आगे अक्षरब्रह्म के अन्य स्वरूप को जानें ।

7. अक्षरब्रह्म - भगवान के धाम के रूप में

शास्त्रों में अक्षरब्रह्म का निरूपण करते हुए उसे भगवान के परमधाम के रूप में भी इंगित किया है । इस अक्षरधाम के स्वरूप, महत्व एवं उसकी प्राप्ति के उपाय के विषय में शास्त्र क्या कहते हैं - आए देखें-

अक्षरधाम स्थान विशेष

अक्षरब्रह्म तत्त्व एक सनातन दिव्य स्थान के रूप में परब्रह्म तथा मुक्तों को धारण किए हुए हैं । इसीलिए अक्षरधाम का **'पदम्'** अर्थात् शब्द से श्रुति में उल्लेख किया गया है । **'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत् ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।'** (कठ.उप.२/१५). अर्थात् सर्वे वेद जिस स्थान का मनन करते हैं । सर्व तपश्चर्या से भी जो स्थान प्राप्य कहा है । जिसे प्राप्त करने की इच्छा से ही मनीषि ब्रह्मचर्य की साधना करते हैं । वह स्थान ॐ कहलाता है । वही अक्षर है, वही स्थान ब्रह्म है । इस स्थान के तेज का वर्णन करते हुए कहा है - **'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।'** (कठ.उप.५/१५). अर्थात् इस अक्षर धाम के प्रकाश के आगे सूर्य, चंद्र, विद्युत तथा तारों का प्रकाश भी न्यून है, तो अग्नि के प्रकाश की क्या वार्ता ? इस अक्षरधाम के प्रकाश से विश्व में सभी प्रकाशित हैं।

इस अक्षरधाम में भगवान का निवास है । इस बात को उजागर करती श्रुति में कहा है कि **'तद् विष्णोः परमं पदम् ।'(कठ-३/९).** अर्थात् वह अक्षर भगवान का श्रेष्ठ स्थान है । भगवान स्वामिनारायण ने भी कहा है कि 'अक्षरब्रह्म ही भगवान के रहने का धाम है ।' (वच.ग.प्र.१).

अक्षरधाम-सर्वोपरि स्थान

अनंत कोटि ब्रह्मांड में स्थित असंख्य स्थानों में अक्षरधाम सर्वोपरि है । इसे समझाते हुए श्रीमद्भगवद् गीता में कहा है **'अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।'** (भ.गी.८/२१). अर्थात् अक्षरधाम अव्यक्त है और वही परम गति है अर्थात् सर्वश्रेष्ठ स्थान है ।

अक्षरधाम की सर्वोपरिता बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य ऋषि तथा गार्गी के संवाद में सुचारु रूप से प्रगट हुई है। गार्गी ने पूछा कि पृथ्वी किस में ओतप्रोत है ? अर्थात् उसका आधार क्या है ? तब याज्ञवल्क्य जी उत्तर देते हुए कहते हैं कि पृथ्वी जल में ओतप्रोत हैं । इसी प्रकार आगे जल किस में ओतप्रोत है ? इसके उत्तर में मुनि तेज का निर्देश करते हैं। तत्पश्चात् गार्गी के प्रश्न के उत्तर में क्रमशः वायु, आकाश, अहंकार आदि को आधार रूप बनाते हुए याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि अंत में सभी का आधार अक्षरब्रह्म है यह सुनकर गार्गी जिज्ञासावश और आगे पूछ बैठती है **'कस्मिन्नु खलु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्चेति ।'(बृ. ३/६/१).** ब्रह्मा लोग किसमें ओतप्रोत है ? तब याज्ञवल्क्य जी ब्रह्मनाद करते हैं । वे कहते हैं कि **'स होवाच गार्गि मातिप्राक्षीर्मा ते मूर्धा व्यपत्पदनतिप्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि गार्गि माऽतिप्राक्षीरिति ततो ह गार्गी वाचक्नव्युपरराम ।'** (बृह.उप.३/६/१). 'बस करो गार्गी, यदि आगे प्रश्न करोगी तो तुम्हारा शीर्षोच्छेद हो जाएगा ।

अक्षरधाम से ऊपर कोई स्थान है ही नहीं । अतः इससे परे स्थान की कल्पना को भी याज्ञवल्क्य जी प्राणघातक बताते हैं।

अक्षरधाम-माया के गुणों से परे

अक्षरधाम अप्राकृत है माया से परे है । इसलिए उस पाप रूप माया से परे दर्शाते हुए कहा है । **'विपापो विरजोऽविचिकित्सो ब्राह्मणो भवत्येष ब्रह्मलोकः ।'** (बृह.उप.४/४/२३). अर्थात् अक्षरधाम पापरहित रजोगुण आदि मायिक गुणों से परे एवं मायाकृत संदेह से ऊपर है ।

तदुपरांत 'सर्व पाप्मानोऽनोऽतो निवर्तन्ते । अपहतपाम्पा ह्योष ब्रह्मलोकः'(छा.८/१/५). अर्थात् अक्षरधाम जिससे सर्व पापमय में मायिक भाव बहुत दूर भागते हैं, **'अपहतपाम्मा'** हैं अर्थात् अमायिक है **।**

अक्षरधाम से पुनरावृत्ति नहीं

अक्षरधाम की यह द्वितीय विशेषता है कि उसकी प्राप्ति के बाद वहाँ से पुनरागमन नहीं होता है। अक्षरधाम तक अन्य सभी लोगों से पुनः मृत्युलोक में आना पड़ता है । इसे भगवत गीता में इस प्रकार कहा है **'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।'** (भ.गी.८/१६). अर्थात् अक्षरधाम तक सभी लोकों से पुनः लौटना पड़ता है। छांदोग्य उपनिषद में भी इसकी पुष्टि के वचन मिलते हैं **'स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ।।'** (छां.उप.८/१५/१). अर्थात् इस ब्रह्म लोक की प्राप्ति के पश्चात मुक्त का पुनः इस लोक में आगमन होता ही नहीं है ।

अक्षरधाम में परब्रह्म के दर्शन

अक्षरधाम की प्राप्ति का हेतु क्या है ? वहां जाकर क्या करना है ? इन प्रश्नों के समाधान में शास्त्र कहते हैं कि **'स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात् परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ।।'** (प्रश्न.उप.५/५). अर्थात् मुक्त ब्रह्मणों को प्राप्त कर लेने के पश्चात् वहाँ जीव, ईश्वर आदि से परे अक्षरब्रह्म, उस से भी परे पुरुषोत्तम नारायण को देखता है परब्रह्म की अनंत सुखमयी मूर्ति के दर्शन में अक्षरधाम की प्राप्ति की सार्थकता संनिहित है।

अक्षरब्रह्म अक्षरधाम में मूर्तिमान सेवक के रूप में

एक ही अक्षरब्रह्म तत्व के भिन्न-भिन्न कार्यों को हमारे सनातन शास्त्र सरलतापूर्वक एवं स्पष्टतापूर्वक समझाते हैं । अक्षर ब्रह्म स्थान के रूप में अक्षरधाम के रूप में परब्रह्म तथा अनंत कोटि मुक्तों को धारण करने के साथ-साथ उसी स्थान में मूर्तिमान परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण की सेवा में भी विराजित है ।

इसे मुंडक उपनिषद के द्वारा भली-भांति समझा जा सकता है । महर्षि अंगिरा शिष्य शौनक को इसी अक्षर ब्रह्म तत्त्व के विविध स्वरूप को समझा रहे हैं । वे कहते हैं -**'महत्पदम् अत्र एतत् समर्पितम् । एजत् प्राणन्निमिषच्च...तदेतद् अक्षरं ब्रह्म'** (मुं.उप.२/१/१-२). हे शौनक ! सचमुच ! यह अक्षरब्रह्म **'महत् पदम्'** अर्थात् एक महान सर्वोत्कृष्ट स्थान रूप है । इतना ही नहीं परंतु **'अत्र एतत् समर्पितम्'** यहाँ **'अत्र'** से तात्पर्य है उसी अक्षरधाम में और **'एतत्'** का अर्थ है कि अक्षर ब्रह्म तथा **'समर्पितम्'** अर्थात् पुरुषोत्तम नारायण की सेवा में समर्पित है । इसी क्रम में आगे वे कहते हैं । हे शौनक ! परब्रह्म की परम सेवा में रत अक्षरधाम **'एजत्** अर्थात् गतिशील है **'प्राणत्'** अर्थात् श्वास लेता है और **'निमिषित्'** अर्थात् आंखें भी पटपटाता है । कहने का आशय यह है कि अक्षरधाम में पुरुषोत्तम नारायण की सेवा में अक्षरधाम निराकार नहीं, परंतु सदा साकार एवं दिव्य कर चरण आदि सकल इंद्रिययुक्त है । इसका और अधिक स्पष्ट विवरण करते हुए मुनि अंगिरा कहते हैं - **'दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः । मनोमयः प्राणशरीरनेता'** (मु.उप.२/२/९). दिव्य ब्रह्मपुर अक्षरधाम में यही अक्षरब्रह्म भी विराजित है। और मन, प्राण शरीर आदि अंगों से युक्त मूर्तिमान है।

इस प्रकार अक्षरधाम के विशिष्ट स्वरूप का ज्ञान हमें शास्त्रों के माध्यम से होता है । इस सर्वांग संपूर्ण मूर्तिमान अक्षरब्रह्म के साथ ही अक्षरधाम में रहकर मुक्त अवस्था को प्राप्त मुक्तत्माएँ भी परमात्मा से परम आनंद की भोगी हैं । यह बात तैतिरीय उपनिषद के 'आनन्दवल्ली' प्रकरण में की है । **'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ।'** (तै.उप.आ.व.१).

अक्षरब्रह्म के इस स्वरूप को भगवान स्वामिनारायण ने ग.प्र.२१ वे वचनामृत में भी बताया है, वह अक्षर दूसरे स्वरूप में पुरुषोत्तम नारायण की सेवा में रहता है ।

अक्षरधाम के इन विभिन्न अलौकिक स्वरूपों का ज्ञान शास्त्रों के माध्यम से हमें होता है, किंतु सर्वकारण, सर्वव्यापक और सर्वाधाररूप चिदाकाश अक्षरब्रह्म का अनुभव सुगम नहीं है । तदुपरांत अक्षरधाम रूप में तथा धाम में सेवक रूप में विराजित अक्षरब्रह्म को बिना ब्रह्म रूप हुए जाना या देखना असंभव है। अतः इसका अनुभव तो तभी हो सकता है जब स्वयं अक्षरब्रह्म इस लोक में मनुष्य रूप में पधारे । नयनगोचर अक्षरब्रह्म के प्रसंग से यह संभव हो सकता है । परंतु क्या अप्रतिम महिमा धारक अक्षरब्रह्म मानव रूप में अवतरित होते हैं ? इस जिज्ञासा का प्रत्युत्तर हमारे शास्त्र हां में देते हैं । जी हाँ, अक्षरब्रह्म का इस लोक में मनुष्य रूप में आगमन अवश्य होता है और हम उनका प्रसंग भी कर सकते हैं । यही तो अक्षरब्रह्म का सर्व लोकोपयोगी दिव्यस्वरूप है । आए इस विषय में शास्त्रों का मार्गदर्शन प्राप्त करें ।

8. अक्षरब्रह्म ब्रह्मस्वरूप गुरु के रूप में

भूलोक में हम सबके बीच विचरते प्रत्यक्ष गुणातीत गुरु अक्षर ब्रह्म का मनुष्य स्वरूप है । प्रकट अक्षर ब्रह्मस्वरूप गुरु के आश्रय में जाकर उनका दृढ़ प्रसंग करने पर ही हमारी आत्मा में ब्रह्म के गुण आ सकते हैं । हम ब्रह्मरूप हो सकते हैं तथा परमात्मा की प्रत्यक्षता का अनुभव कर सकते हैं । अतः एवं उपनिषद में इसे सिद्धांत ही बना दिया है **'तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठम् ।** '(मुं.उप.१/२/२). यदि ब्रह्मविद्या का साक्षात्कार चाहते हो तो गुरु के पास जाना ही होगा। और गुरु कैसे हो तो **'श्रोत्रियम्'** अर्थात् सर्व शास्त्रों के रहस्य को साक्षात प्राप्त किए हुए हों । **ब्रह्म** अर्थात् स्वयं साक्षात अक्षरब्रह्म तथा **'निष्ठम्'** अर्थात् परब्रह्म परमात्मा में अनन्य स्थिति के धारक हों परमात्मा में परमाश्रयपरायण हों ।

इस प्रकार अक्षरब्रह्म पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में अवतरित हो गुरु रूप में दर्शन देते हैं इसलिए भगवत गीता में **'तद् विद्धि पणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।'** (भ.गी.४/३४). कहकर अक्षर ब्रह्मस्वरूप गुरु को ही ज्ञानी और तत्त्वदर्शी बताया है । उन्होंने नमन, परि प्रश्न एवं सेवा द्वारा प्रसन्न कर ब्रह्मविद्या का साक्षात्कार करने का निर्देश किया है ।

अक्षरब्रह्म गुरु भवजल तारक - सेतु भी, नौका भी

इस अवसर ब्रह्मस्वरूप गुरु की शिष्य के आध्यात्मिक जीवन में क्या भूमिका है इसे उपनिषदों में विविध उपमा द्वारा सरलतापूर्वक समझाया गया है । कठोपनिषद में यम राजा के वचन हैं- **'यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् । अभयं तितीर्षतां पारं नचिकेतं शकेमहि ।।'** (कठो.उप.३/२). अर्थात् संसार माया के गहरे भँवर तथा जल प्रवाह पार करने के इच्छुक मुमुक्षु के लिए अक्षरब्रह्म सेतु समान है । जिस प्रकार सेतु नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक पहुँचाने का माध्यम बनता है । उसी प्रकार अक्षरब्रह्म भी गुरु रूप में सेतु की भूमिका का वहन करते हैं तथा परमात्मा के धाम में पहुंचा कर परमात्मा का मिलाप करा देते हैं । इसी का संश्लेषण करते हुए मुंडक उपनिषद् में अंगिरा ऋषि अपने शिष्य शौनक को कहते हैं **'अमृतस्यैष सेतुः'** (मुं.उप.२/२/३). यह अक्षरब्रह्म अमृत स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करने का सेतु है ।

इस भावना को एक भिन्न दृष्टांत से श्वेताश्वतर उपनिषद में भी समझाया गया है **'ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहिना ।'** (श्वेता.उप.२/८). बुद्धिशाली मनुष्य को अक्षर ब्रह्मरूपी नौका का आश्रय ग्रहण कर इस भयंकर माया के प्रभाव को तैरकर जाना चाहिए ।

साररूप में हम कह सकते हैं कि सेतु रूप में या नौका का रूप में अक्षर ब्रह्म हमारे गुरु पद का आसीन होकर हमें माया पार करा कर हमारा परमात्मा से मिलाप करा देते हैं।

9. प्रकट अक्षरब्रह्म का प्रसंग

इस प्रकार साक्षात अक्षरब्रह्म अति करुणा करके इस लोक में अवतीर्ण अवश्य होते हैं, उनका विचरण भी हमारे बीच में ही होता है परंतु उनके स्वरूप के ज्ञान एवं प्रसंग के अभाव में हम उनके लाभ से वंचित रह जाते हैं । इसीलिए उपनिषद में प्रकट ब्रह्मस्वरूप गुरु हरि को धनुष्य की उपमा देकर एक अत्यंत प्रभावक बात कही है - **'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत् ।।'** (मुं.उप.२/२/४). प्रणव का अर्थ है ओंकार । ओंकार का अर्थ है अक्षरब्रह्म **'ॐ इत्येतद् एतद्ध्येवाऽक्षरं ब्रह्म ।'** (मुं.उप.२/१५/१६). - **'ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म'** (गीता ८/१३). इत्यादि शास्त्र वचनों में ओंकार शब्द से अक्षरब्रह्म को निरूपित किया हैं।

10. अक्षरब्रह्म के चार स्वरूपों की अवगणना से उत्पन्न समस्याएँ

परब्रह्म सर्वोपरि, नित्य, स्वतंत्र तत्त्व हैं । अक्षरब्रह्म परब्रह्म से न्यून, किन्तु जीव, ईश्वर, माया का आधार और प्रेरक है। अक्षरब्रह्म की महत्ता के आगे जीव-ईश्वर इत्यादि चैतन्य अति न्यून है। इस तरह भगवान स्वामिनारायण ने अक्षरब्रह्म की अपंरपार महिमा कही है।

अक्षरब्रह्म एक और अद्वितीय तत्त्व है, किन्तु इसकी विभिन्न सेवा कार्यों से इसे विविध प्रकार की संज्ञा देकर संबोधित किया जाता है। इस प्रकार अक्षरब्रह्म के चार सेवा कार्य हैं, जो इस तत्त्व होने के अपरिहार्य कारण हैं : -

- अक्षरब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण का धामरूप स्थान हैं। यह नित्य है अप्राकृत है, सच्चिदानंद हैं, अन्तहीन है और, अखण्ड है। (ग.प.१२). यह धामरूप अक्षर बहुत बड़ा है। जिनके एक रोम-रोम में अनन्तकोटी ब्रह्माण्ड परम की तरह प्रतीत होते है । (ग.प्र.६३). देहविलय के बाद ब्रह्मरूप होकर सब भक्तों को अक्षरधाम में अखण्ड भगवान की सेवा करनी हैं। यही सब भक्तों के जीवन का उद्देश्य है, संकल्प हैं। गुणातीतानन्दस्वामी भी कहते) है कि अक्षरधाम में जाना है, यह एक संकल्प रखना ।) तो अगर ब्रह्म का यह सेवा कार्य धामरूप स्वरूप न होता तो यह संकल्प अधुरा रहता और मृत्यु के बाद भक्तों के जीव की गति कहाँ होती? । अतः धामरूप अक्षर की अनिवार्यता हैं।
- अक्षरधाम में मूर्तिमान सेवक के रूप में (ग.प्र.२१) –

  मूर्त तत्रास्ति कृष्वस्य सेवायां दिव्य विग्रहम्।(हरिवाक्यसुधासिन्धुः२१/२२)

  अक्षर स्वयं मूर्तिमान होकर अखण्ड भगवान की सेवा में रहते हैं और यह परमेश्वर की सर्वोत्कृष्ट भक्ति और सेवा का आदर्श स्वरूप है। इस आदर्श के अनुसार सभी भक्तों को भगवान की सेवा करने का मार्गदर्शन प्राप्त होता है। अगर यह स्वरूप नहीं होता तो भक्तों को भक्ति का आदर्श अज्ञात रहता और भक्ति में कईं विघ्न और दूषण आ जाते । इसलिए इस स्वरूप की अनिवार्यता है।

- चिदाकाशरूप में (ग.प्र.२१) पुरुषोत्तम की -प्रेरणा से अक्षरब्रह्म सर्वव्यापक है।(गीता-१३/१६). जो व्यापक है, वहीं सूक्ष्मातिसूक्ष्म के अंदर भी होता है। यही चिदाकाश अक्षरब्रह्म ही अनन्त ब्रह्माण्ड के आधाररूप है।(ग.प्र.४६), यदि यह अक्षरब्रह्म सर्व के आधाररूप नहीं होते तो परब्रह्म से भिन्न और उनकी नित्येच्छा से अक्षरब्रह्म की कारणता सिद्ध न होती । (मु. ३/१/१७).
- पृथ्वी पर मनुष्यरूप अक्षरब्रह्म – (ग.प्र.७१). मुमुक्षु आत्यन्तिक ज्ञान प्राप्त करके अक्षरधाम की प्राप्ति करे और वे अक्षरधाम में विराजमान साकार परब्रह्म की उपासना करे । इसीलिए इस पृथ्वी पर प्रकट मनुष्यरूप अक्षरब्रह्म एक सेतु समान है। एक माध्यम के समान है। यदि यह स्वरूप न होता तो आत्यन्तिक कल्याण के लिए भगवान के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान, महिमा और भक्ति की आदर्श रीत यह सब शास्त्रों में सीमित रह जाती । जैसे पुरुषार्थ करने के बाद भी लोमड़ी को अंगुर प्राप्त न हुआ । तो मान लिया अंगुर खट्टा है, नहीं खाना है। इस तरह सब मुमुक्षु

यह मान लेते, यह तो शास्त्रों की बाते है। जीवन में कुछ होता नहीं है, ऐसी स्थिति बचने के लिए भगवान जब पृथ्वी पर प्रकट हुए , तब अपने अक्षरधाम को भी साथ लाए और उनके द्वारा ही प्रकट रहने का वचन दिया और अद्यावधि पृथ्वी पर गुणातीत सत्पुरुष के रूप मुमुक्षुओं के लिए आत्यंतिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

11. उपसंहार

प्रस्थानत्रयी के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अक्षरब्रह्म वेदांत दर्शन का मूल तत्त्व है। इसके चार स्वरूप; चिदाकाश, धाम में परब्रह्म के सेवकरूप, धामरूप, और पृथ्वी पर गुणातीत गुरुरूप अक्षर; ये ब्रह्म के विविध आयामों को प्रकट करते हैं। उपनिषदों में यह तत्त्व शाश्वत सत्य के रूप में, गीता में जीवों के लिए साधना और मोक्ष के माध्यम और आदर्श के रूप में, तथा ब्रह्मसूत्र में तात्त्विक प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार अक्षरब्रह्म स्वामिनारायण दर्शन के पञ्च तत्त्वों में एक शाश्वत तत्त्व है, जो जीव, ईश्वर, माया से परे और परब्रह्म से न्यून है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

Aksharjivandas Sadhu, editor. *Vacanāmṛta Sāra-sindhu*. First, Swaminarayan Aksharpith, 2013.

Bhadreshdas Sadhu. *Brahmasūtra-Svāminārāyaṇa-Bhāṣyam*. First, Swaminarayan Aksharpith, 2009.

---. *Parabrahma Svāminārāyaṇa Prabodhita Akṣarapuruṣottama Darśana (Paricaya)*. First, Swaminarayan Aksharpith, 2018.

---. *Śrīmad-Bhagavad-Gītā-Svāminārāyaṇa-Bhāṣyam*. First, Swaminarayan Aksharpith, 2012.

---. *Svāminārāyaṇa-Siddhānta-Sudhā: Parabrahma-Svāminārāyaṇa-Prabodhitam "Akṣarapuruṣottamadarśanam."* First, Swaminarayan Aksharpith, 2017.

---. *Upaniṣad-Marma*. Second, Swaminarayan Aksharpith, 2012.

---. *Upaniṣat-Svāminārāyaṇa-Bhāṣyam - Īśādyaṣṭopaniṣat-Svāminārāyaṇa-Bhāṣyam*. First, Swaminarayan Aksharpith, 2009.

---. *Upaniṣat-Svāminārāyaṇa-Bhāṣyam 2 - Bṛhadāraṇyakopaniṣat-Svāminārāyaṇa-Bhāṣyam*. First, Swaminarayan Aksharpith, 2012.

Brahmadarshandas Sadhu. *Vacanāmṛta Rahasya: Part 1*. Sixth, vol. 1, Swaminarayan Aksharpith, 2011.

---. *Vacanāmṛta Rahasya: Part 3*. Fourth, vol. 3, Swaminarayan Aksharpith, 2014.

Compiled. *Suṇo Akṣaranī Moṭāī Re*. First, Swaminarayan Aksharpith, 2017.

Mukundcharandas Sadhu. *Vachanamrut Handbook*. Third, Swaminarayan Aksharpith, 2007.

Paramtattvadas Swami. *An Introduction to Swaminarayan Hindu Theology*. First, Cambridge University Press, 2017.

Potter, Karl H. *Encyclopedia of Indian Philosophies: Advaita Vedānta up to Saṃkara and His Pupils*. First, vol. 3, Motilal Banarasidass, 1981.

Rao, Nagaraja. *The Schools of Vedānta*. First, Bharatiya Vidya Bhavan, 1943.

Raymond Brady Williams, and Yogi Trivedi, editors. "Theology and Literature." *Swaminarayan Hinduism: Tradition, Adaptation, and Identity*, First, Oxford University Press, 2016, p. 439.

Richard H. Davis. *The Bhagavad Gita: A Biography*. Princeton University Press, 2015.

Shrutiprakashdas Sadhu. *Akṣarabrahma Nirūpaṇa*. First, Swaminarayan Aksharpith, 2009.

---. *Akṣarapuruṣottama-Māhātmyam: Part 1*. First, vol. 1, Swaminarayan Aksharpith, 2013.

---. *Akṣarapuruṣottama-Māhātmyam: Part 2*. First, vol. 2, Swaminarayan Aksharpith, 2012.

---. *Pramāṇa-Ratnākara*. First, AARSH, Akshardham, 2016.

---. *Śrīsvāminārāyaṇa-Siddhāntacandrikā*. First, AARSH, Akshardham, 2014.

Svamīnī Vāto. Twentieth, Swaminarayan Aksharpith, 2013.

Timalsina, Sthaneshwar. *Seeing and Appearence*. Shaker Verlag, 2006.

Vacanāmruta. Twenty-Third, Swaminarayan Aksharpith, 2006.

मूल ग्रंथों के नाम	संक्षिप्त रूप
ब्रह्मसूत्र-	ब्र.सू.
भगवद्गीता-	भ.गी.
ईशावास्य उपनिषद्-	ई. उप.
केन उपनिषद्-	के. उप.
कठ उपनिषद्-	क. उप.
प्रश्न उपनिषद्-	प्र. उप.
मुण्डक उपनिषद्-	मु. उप.
माण्डूक्य उपनिषद्-	मा. उप.
तैत्तिरीय उपनिषद्-	तै. उप.
ऐतरेय उपनिषद्-	ऐ. उप.
छान्दोग्य उपनिषद्-	छां. उप.
बृहदारण्यक उपनिषद्-	बृ. उप.
श्वेताश्वतर उपनिषद्-	श्वे. उप.
कौषीतकी उपनिषद्-	कौ. उप.
वचनामृत-	**वच.**
गढ़डा- प्र./ म./ अं./	गढ़.
सारंगपुर	सार.
पंचाला-	पं.
लोया-	लो.
कारियानी-	कार.
जेतलपुर-	जेत.
अहमदाबाद-	अम.
वरताल-	वर.